International Journal of Scientific Research in Science and Technology
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X (www.ijsrst.com)
doi : https://doi.org/10.32628/IJSRST

ब्रिटिशकालीन भारत की सामाजिक समस्याएँ : नई शिक्षा, विद्वन्मंडली और आंग्लवादी मोड़

विशाल कुमार[1], विकाश कुमार[2]

[1]शोधार्थी, बिहार विश्वविद्यालय, इतिहास विभाग,

[2]बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

Article Info
Volume 7, Issue 6
Page Number: 182-189
Publication Issue :
November-December-2020

Article History
Accepted : 08 Nov 2020
Published : 17 Nov 2020

ABSTRACT

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सामाजिक नीति को समझने और उसका मूल्यांकन करने के लिए तथा भारीतय समाज पर इसका प्रभाव जानने के लिए सबसे पहले उस नीति और उसके बारे में जानकारी के व्यापक प्रयोजन को समझना होगा। यहॉं स्थानीय ज्ञान के सृजन और सामाजिक नीति के बीच सीधा सह–संबंध था। उपनिवेशी ज्ञान को किस तरह स्थापित किया गया था, यह जानना इतिहासकारों के लिए एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है।

उपनिवेशी ज्ञान की प्रकृति पर परिचर्चा भी आयोजित की जा चुकी है और इस बहस के केंद्र में उपनिवेशी विषयों की भूमिका पर परस्पर दो विपरीत पक्षों का मूल्यांकन किया गया। एक पक्ष को तर्क है कि प्रजा की भूमिका इसमें नगण्य थी जबकि दूसरे पक्ष का तर्क है कि उपनिवेशी ज्ञान का सृजन सक्रिय साझेदारी के माध्यम से किया गया। उसका यह तर्क उचित लगता था कि भारत में औपचारिक रूप से साझेदारी का वास्तविक आधार ब्रिटिश शासन के पहले चतुर्थांश काल में अधिकारियों द्वारा भारतीय पंडितों की नियुक्ति करना था और अधिकारियों ने हिंदू और मुस्लिम कानून तथा सामजिक कार्यों की मध्यस्थ समझ के माध्यम से भारतीय समाज और सांस्कृतिक कार्यकलापों में धुलने–मिलने की कोशिश की। अतः यहॉं तक कि कंपनी की शैक्षणिक नीति की आरंभिक शुरुआत भी भारतीय संस्कृति की विशिष्टताओं से अवगत कराने तथा इनके प्रति संवेदनशील बनाने के लिए होनहार नौकरशाहों की एक टीम को प्रशिक्षित करने से हुई। साथ ही, भारतीय समाज की संरचनओं में भी उनकी रूचि बढ़ती गई। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक, यह रूचि शिक्षा के स्तर तक ही थी और कंपनी सकारात्मक तरीके के बजाय किसी अन्य तरीके से

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती थी। इनमें से एक तरीका उपनिवेशी विषयों कें तहत परस्पर हित के आकलन से संचालित होता था। यह विशेष स्थिति निर्धारण— जिनमें से एक ने भारत के अतीत और सांस्कृतिक परंपराओं में शोध के एक महत्त्वपूर्ण कार्य को प्रेरित किया और आम तौर पर जिसे ब्रिटिश भारत के इतिहास में प्राच्यवाद कहा गया। ब्रिटिश प्राच्यवाद (1772—1835) एक अनूठी घटना थी जो भाषाओं तथा भारत की संस्कृति में ब्रिटिष प्रशासकों के एक वर्ग को प्रशिक्षित करने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी की जरूरतों से प्रेरित थी। इसकी शुरूआत भारत में पहले तथा संभवतः सबसे प्रसिद्ध ब्रिटिश गवर्नर—जनरल वारेन हेस्टिंग्स (1732—1818) के सत्ता में आने से हुई। हेस्टिंग्स के प्राच्यवाद में सच्ची सराहना का एक तत्त्व था, जैसा कि उन्होंने महसूस किया था, : ‘‘भारत के निवासियों में, अति प्रतिभाशाली और सच्चे ईमानदार पुरूष हैं तथा उनमें अपने साम्राज्य के प्रति उतना ही सम्मान का भाव है... आप अपने कार्यों से अपने देश के लोगों के बीच यह चलन शुरू करें कि वे उनके साथ शालीनता से पेश आएं और समाज के उन्हीं समान अधिकारों के साथ उनके भागीदार बनें।’’ लेकिन साथ ही, उन्होंने ब्रिटिश कानून और रीति—रिवाजों को लागू करने की आवश्यकता नहीं समझी और अपने साथ के लोगों को यह जिम्मेदारी सौंप दी तथा खास तौर पर आदेश जारी कर दिया कि मूल निवासियों, शादी, जाति और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों तथा संस्थानों पर आधारित सभी वर्गों में मुस्लिमों से जुड़े कुरान कानून, जेंतू या गेंतू (गैर—मुस्लिम, गैर—ईसाई) से संबधित शास्त्र का कानून इस तरह के सभी अवसरों पर स्वीकार्य होंगे, मौलवी या ब्राह्मण इस कानून को समझाने के लिए परस्पर आगे आएंगे और वे इस रिपोर्ट पर हस्ताक्षर कर देंगे तथा इस आदेश को पारित करने में मदद करेंगे। इस प्राच्यवाद का परिणाम यह हुआ कि बंगाल स्थित एशियाटिक सोसायटी और कलकत्ता मदरसा तथा बनारस में संस्कृत कॉलेज जैसे संस्थानों की स्थापना में इसका ठोस प्रभाव देखने को मिला। इन संस्थानों के संरक्षण में, कानून संबंधी लेखों, रीति—रिवाजों और साहित्यिक लेखों का प्रभावशाली प्रकाशन हुआ और इस प्रकार इस काल में उभरते प्राच्यविदों को प्रोत्साहन मिला। नाथेनियल हेलहेड (हिंदू कानून की संहिता जुटाने के लिए हेस्टिंग्स द्वारा प्रोत्साहित), एच. टी. कोलब्रूक (1794—1816), विलियम जोंस (1784—94), एच. एच. विल्सन (1815—32) और जेम्स प्रिंसेप (1832—38) जैसे लोगों की उपलब्धियों ने निश्चित रूप से भारत की प्राचीन और सांसकृतिक परंपराओं में एक उत्कृष्ट काल का एक महत्त्वपूर्ण तथा स्थायी प्रभाव छोड़ा।

इतिहासकार डेविड कोफ के अनुसार, ज्ञानोदय की ही उपज प्राच्यवादी थे और उनका विस्तार साहित्यिक, विश्व बंधुत्व और तर्कवाद की धारणाओं में हुआ। अन्य संस्कृतियों के प्रति सहिस्णुता और खुलापन ऐसा विचार था जिनसे वे काफी प्रभावित थे। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उनहें हेस्टिंग्स तथा वेलेजली जैसे प्रशासकों के एजेंडे के लिए पहले से प्रवृत्त कर लिया गया था, इन दोनों ने ही ज्ञान और प्रशिक्षण के संस्थान स्थापित करने का नेतृत्व किया था। विलियम कॉलेज जैसे प्राच्यविद ज्ञान के इन नए संस्थानों का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह था कि साहित्यिक गतिविधियों का एक नया और विस्तारित नेटवर्क

बना और जिसमें प्रभावशाली देसी विद्वान उभरे और अग्रणी बने। कुछ समय बाद इन विद्वानों ने ही शिक्षा की नई और विसतारित संभावनाओं को साकार किया और बाद में उपनिवेशवाद के दौर में रोजगार पाया। समय के साथ वे एक महत्त्वपूर्ण तथा नए सामाजिक वर्ग के रूप में उभरे जिन्होंने उदारवाद, आधुनिकता तथा तार्किकता के नए प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास किया और इस प्रकार सामाजिक तथा धार्मिक सुधार उभारने में अहम भूमिका निभाई।

नई शिक्षा, विद्वन्मंडली और आंग्लवादी मोड़

भारतीय समाज को समझने के लिए हेस्टिंग्स यदि प्राच्यविदों का स्वरूप बनाने में सफल रहें, तो मैकाले ने पश्चिमी शिक्षा और नैतिक पुनरूद्धान की अधिक व्यावहारिक तथा स्पष्ट परियोजना के पक्ष में इसका त्याग किया। इसका अर्थ यह हे कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पश्चिमी विद्वता के लिए प्राच्यविद् का ज्ञान सामाजिक सुधार और हस्तक्षेप की परियोजना से अनिवार्य रूप से जुड़ा था, लेकिन इस समय सबसे बड़ा मुद्दा था उपनिवेशी प्रशासन का सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप और देशी संस्थानों तथा परंपराओं को नीचा दिखाने का आत्मविश्वास बढ़ा। यह याद रखना भी जरूरी है कि सभी उपयोगितावादी पश्चिमी शिक्षा के पक्ष में नहीं थे, जेम्स मिल जैसे कई लोग वर्नाकुलर (स्वदेशी शिक्षा) के पक्षधर सिर्फ इसलिए थे क्योंकि स्वदेशी आबादी में पश्चिमी शिक्षा की मांग बढ़ती जा रही थी। सन् 1813 में, ब्रिटिश संसद ने जब आदेश जारी किया कि शिक्षा के सुधार के लिए ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी वार्षिक एक लाख रूपये भेजेगी और नवगठित कमेटी ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन ने जब संस्कृत कॉलेज की स्थापना को योजना बनाई तो राजा राममोहन राय ने इस कदम का यह कहकर विरोध किया कि यह अनुदान पश्चिमी विज्ञान पढ़ाने पर खर्च किया जाना चाहिए। उन्होंने लिखा, ‘‘हमें पूर्ण विश्वास था कि यह धनराशि यूरोपीय भद्रजनों की प्रतिभाओं और शिक्षा से परिचित कराने पर खर्च होगी जो भारत के निवासियों को गणित, दर्शन, रसायन, शल्य चिकित्सा और अन्य उपयोगी विज्ञान का ज्ञान दे सके। अब हमें लगता है कि सरकार हिंदू पंडितों के अधीन संस्कृत स्कूल बनाने जा रही है ताकि ऐसे ज्ञान को अलग रखा जा सके तो भारत में पहले से मौजूद हैं।’’ कमेटी ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन असल में इस मुद्दे पर बंटी हुई थी और 1835 में ही मैकाले की वाकपटुता प्रबल हुई और अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पश्चिमी शिक्षा देने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। यह एक अहम मोड़ था क्योंकि अब भारतीय अंग्रेजी की उदारता और वैज्ञानिक विचारों के प्रभाव का पूर्ण लाभ उठा सकते थे और सुधारवादी प्रक्रियया में वे स्वयं अपने विचार प्रस्तुत करने की क्षमता रख सकते थे।

ब्रिटिश भारत की शिक्षा अपने आरंभिक काल से ही सामाजिक बदलाव के एक महत्त्वपूर्ण एजेंट के रूप में उभरी थी। कमेटी ऑफ पब्लिक इंस्ट्रकशन के तहत शिक्षा को औपचारिक रूप देने से पहले भी स्वदेशी नौकरपेशा समूह– व्यापारी एवं अन्य– नई व्यवस्था से प्रभावित होकर शुरूआती उपनिवेशवादी शहरों

कलकत्ता, बंबई और मद्रास में जुटे थे। वे लोग उनकी न्याय व्यवस्था और उनके शिक्षा सह प्रशासनिक संस्थानों से काफी प्रभावित थे, इस संदर्भ में फोर्ट विलियम कॉलेज का उदाहरण लिया जा सकता है। इन तीनों शहरों में कालों और गोरों की अलग–अलग निर्दिष्ट बस्तियां होती थीं, वहाँ कि अदालतें विवादों के निपटारे में हस्तक्षेप करती थीं और शहर के निवासियों को समझौते और अनुभव के एक नए दायरे में रखती थीं। मेयर की अदालतों में पहुँचने वाली कारोबारियों की बड़ी संख्या को ब्रिटिश कानून के लाभ दिलाने में अनदेखी नहीं होती थी। इसके अलावा ये अदालतें मिशनरी उद्यमों और उनके प्रकाशन कार्यक्रमों से प्रभावित थीं, जबकि कुछ तो कंपनी द्वारा प्रायोजित भी थीं लेकिन लगभग सभी अदालतें स्थानीय बुद्धिजीवियों के बीच अपने विचार थोपने में सक्षम थीं। यह मद्रास के लिए भी उतना ही सच था जितना कि बंगाल के लिए जहाँ प्रकाशन और शिक्षा के क्षेत्रों में मिशनरी उद्यम काफी महत्त्वपूर्ण था और स्थानीय बुद्धिजीवियों को बड़े पैमाने पर शैक्षणिक सुधार लाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इस संदर्भ में मद्रास की प्रोटेस्टेंट मिशनरी और बंगाल की सीरामपुर मिशनरी विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण थीं। केरी, मार्शमैन और वार्ड के नेतृत्व में सीरामपुर मिशन बाइबिल को स्थानीय भाषा में अनूदित करने तथा स्कूल संचालित करने में अग्रणी रही, मानो वह एकमात्र सीमित उद्देश्य के लिए ही हो। डेविड हेयर ने इसी का अनुसरण करते हुए अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाते हुए एक स्कूल स्थापित किया जबकि कलकत्ता स्कूल सोसायटी और कलकत्ता बुक सोसायटी ने प्राथमिक शिक्षा के लिए स्वदेशी भाषा के स्कूलों को बढ़ावा देना शुरू किया। कलकत्ता स्कूल सोसायटी का लक्ष्य सरकार द्वारा स्थापित संस्थानों से इतर शिक्षा प्रदान करना था और स्पष्ट था कि विशेष तौर पर कलकत्ता जैसे शहरों में शिक्षा के बारे में एक अलग विचारधारा पनपने लगी थी। इससे दो चीजें प्रभावित हुई; एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिसने इस शहर में अपना जीवन देखा और सामाजिक संबंधों में इसने शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण संपत्ति के रूप में समर्थन दिया। दूसरा, इसी वजह से स्वदेशी शिक्षा के समर्थकों और पश्चिमी शिक्षा को पसंद करने वालों के बीच विचारों का ध्रुवीकरण हो पाया। कोफ इसे कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं, 'प्राच्यवादी संपर्क के कारण पीछे धकेल दी गई बुद्धिजीवियों की पुरानी पीढ़ी अपने ''मूल'' स्थान पर लौट आई।'

सन् 1835 में प्रसिद्ध मैकाले मिनट से जबर्दस्ट बलदाव आया। एक साल पहले ही कानून मंत्री के रूप में भारत आए थॉमस बेबिंगटन मैकाले को पब्लिक इंस्ट्रक्शन की आम सभी का अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया था। 2 फरवरी 1835 को उन्होंने अपना प्रसिद्ध मिनट (संबोधन) जारी किया जो भारत में अंग्रेजी शिक्षा शुरू करने की बुनयिाद बना। 'पूर्वी सभ्यता के तथाकथित खजाने' को तिरस्कापूर्वक खारिज करते हुए उन्होंने अंग्रेजी भाषा में पश्चिमी शिक्षा, यूरोपीय साहित्य और विज्ञान के लिए ठोस तर्क पेश किए। क्या वह पहल विवादास्पद है– मैकाले के मन में क्या था और उन्होंने अंग्रेजी के प्रति रूझान रखने वाले अधीनस्थों पर निर्भर वर्ग तैयार करने के लिए खुलेआम क्या घोषणा की थी और महानगरीय देश में तैयार इस ज्ञान की नकल से कौन संतुष्ट होगा। प्राथमिक शिक्षा के हित में इस तरह का कोई प्रश्न नहीं उठाता

था— जब तक कि व्यापारिक वर्ग से जनसमूह की और इसके परिशोधन की अनुमति का उद्देश्य स्पष्ट नहीं हो गया। इसके पूरा होते ही भारतीय समाज पश्चिमी ज्ञान और संस्थानों का लाभ उठा सकता था और अधिक वांछित नैतिक तथा आचार—विचार अपना सकता था। इस प्रकार शिक्षा के सहायक बनने में कोई संदेह नहीं रहा— यह सामाजिक और धार्मिक सुधार की समग्र योजना अपनाने की अनिवार्य पर्वू—शर्त थी। विषयों के मामले में यह बदलाव अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इससे सामाजिक और धार्मिक सुधार को लेकर बुद्धिजीवियों को अहम जिम्मेदारियों का आभास हुआ। नई शिक्षा का अनुभव प्राप्त करने के बाद बुद्धिजीवी इसे परंपरा, धर्म और समाज पर लागू करने में सक्षम होते और इस प्रक्रिया में कोई ऐसी परियोजना आरंभ कर सकते थे जो अधिकतर मामलों में अत्यधिक विशिष्ट होती थी। रजन रे ने राममोहन राय और उनके अनुयायियों द्वारा चलाए गए सामाजिक सुधार आंदोलन का अर्थ व्यक्तिगत जीवन में बदलाव को आस्था और व्यवहार के विवेकपूर्ण तथा मानवीय मानदंडों की और प्रवृत्त करना था।

इससे हमारे समक्ष उपनिवेशी शहरों में नए सुशिक्षित वर्ग और इस तरह की प्रगति पर उनकी प्रतिक्रिया का सवाल खड़ा होता है। हमारा विश्लेषण व्यापक तौर पर बंगाल—केंद्रित हो होगा, लेकिन हम कई अवसरों पर क्रमशः मद्रास और बंबई जैसे अन्य शहरों के विकास पर भी टिप्पणी करेंगे। जैसा कि हम जानते हैं कि औपनिवेशिक शहर अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में सत्ता, व्यापार और प्रशासन के बड़ें केंद्र बने और स्थानीय तथा क्षेत्रीय प्रवासियों को आकर्षित किया। आरंभिक काल में जिन प्रवासियों को कंपनी ने वहाँ बसने के लिए प्रेरित किया, उनमें से अधिकतर व्यापारी, निर्माता और सेवा प्रदाता थे और उन्हें रहने के लिए जगह दी गई जिसे ब्लैक टाउन के नाम से जाना गया। अठारहवीं शताब्दी के अंत में कहीं ज्यादा पलायन देखा गया और यह भी सामाजिक ढांचे के संदर्भ में भिन्न था— बंबई में हम कच्छ और काठियावाड़ से बड़ी संख्या में आने वाले व्यापारियों और पारसियों का उदाहरण दे सकते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में मद्रास में सुशिक्षित उच्च वर्ग (खास तौर पर ब्राह्मण) का पलायन धीमा था जो उपनिवेशी शिक्षा तथा बाद में उपनिवेशी रोजगार पाने के उद्देश्य से त्रिचिनापल्ली, तंजौर तिरूनेलवेली से आए थे। तब तक मद्रास की स्थानीय आबाद में व्यावसायिक वर्ग की पर्याप्त संख्या हो चुकी थी— यहाँ व्यावसायिक जातियाँ प्रतिष्ठित हो चुकी थीं और कंपनी की सुरक्षा तथा इसकी न्यायिक निर्णय व्यवस्था का भरपूर इस्तेमाल करते थे। इससे उनके सामाजिक दृष्टिकोण व प्राथमिकताओं में क्या परिवर्तन हुए, यह विवाद का विषय है— सम्मान पाने, मंदिर निर्माण या जुलूस आयोजित करने में अहम भूमिका निभाने जैसे पुराने तौर—तरीकों के खर्चों में उनका लगातार निवेश परंपरा से जुड़े उनके पुराने लगाव के रूप में सामने आने लगा। दूसरी तरफ बंबई में, स्वदेशी व्यावसायिक आबादी शहर के सामाजिक ताने—बाने में स्वयं को सफलतापूर्वक ढालने लगी थी और अधिक मिलसार तथा विश्वव्यापी हो गई थी। यहाँ के 'मूल' शहर में कलकत्ता की तुलना में अधिक शहरी आचरण अपनाया जाने लगा था। यहाँ का सामाजिक गठन आरंभिक व्यापार की आवश्यकताओं से तय होता था जिसके तहत व्यापारियों, दस्तकारों और दलालों को प्रशिक्षण मिलता था लेकिन बाद में वे ब्रिटिश नीति

के अधीन आ गए और इसके परिणामस्वरूप उनका स्थायी अवस्थापन हुआ। पंपनी की प्राच्यवादी नीति वैसे स्थानीय साहित्यकारों और विद्वानों के लिए अहम संभावनाएँ लेकर आई जिन्हें उपनिवेशी प्रशासन द्वारा बसाए गए नए शहरों और संस्थानों में रोजगार मिले। ऐसे लोगों में अधिकतर उच्च जातियों के लोग थे जिन्हें शिक्षा और आध्यात्मिक ज्ञान का परंपरागत लाभ मिला था और प्रशासनिक भाषा पारसी का ज्ञान होने के कारण वे बड़ी तेजी से बदलाव की प्रक्रिया को समझ जाते थे। उदारणस्वरूप, रामकमल सेन के मामले को ही देखें जो एशियाटिक सोसायटी के सबसे पहले सदस्यों में से एक थे। वह पारसी और संस्कृत के ज्ञान के अलावा अंग्रेजी में भी प्रवीण थे और इसी कारण उन्हें उपनिवेशी प्रशासन में रोजगार मिल पाया था। उनकी तरह कई अन्य लोग भी थे जो नए सामाजिक वर्ग– भद्रलोक– के केंद्र में थे। इस वर्ग में ब्रिटिश तथा पेशेवरों के साथ काम करने वाले व्यापारी भी थे। इस वर्ग की उत्पत्ति को छोटे स्तर के स्थानीय कुलीन वर्ग में भी जगह दी गई थीं जिन्होने स्थायी अवस्थापन के बाद जमीन पर अपनी स्थिति बनाए रखी थीं। इसका सबसे पुराना और सर्वश्रेष्ठ उदाहरण राममोहन राय स्वयं हैं, जिन्होंने रंगपुर के डिग्बी में अपनी नौकरी के दौरान बर्दवान में पर्याप्त जमीनी संपत्ति अधिग्रहीत कर ली थी और फिर 1815 में बुद्धिजीवी जीवन जीने के लिए हमेशा के लिए कलकत्ता जाकर बस गए थे। यह वर्ग ईसाई मिशनरी गतिविधियों के प्रभाव में आ गया था और व्यापक प्राच्यवादी परियोजना के तहत प्रायोजित प्रिंटिंग नेटवर्क से जुड़ गया था जिसके परिणामस्वरूप उनमें एक महत्त्वपूर्ण मानसिक बदलाव आया। इस दौरान केवल कुछ धर्मांतरण ही नहीं हुए बल्कि, हिंदू कुलीन वर्ग पर भी परंपरा और धर्मु के बारे में अपनी समझ विकसित करने का दबाव पड़ने लगा और इस कारण हिंदू धर्म की मिशनरी समीक्षा का जवाब भी दिया जाता रहा। इसी दौरान पश्चिमी शिक्षा के प्रति आकर्षण भी बढ़ने लगा था– एक ऐसी प्रगति जिसके तहत 1817 में कलकत्ता में हिंदू कॉलेज की स्थापना हो पाई। यह पहल कलकत्ता के उन अमीर हिंदू परिवारों द्वारा की गई जो एक आधुनिक शिक्षा कार्यक्रम तथा पश्चिमी परंपरा के अनुकूल अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहते थे। सच्चाई यह है कि इस तरह के किसी संस्थान की स्थापना स्वच्छंद मैकाले मिनट में पहले ही हो चुकी थी और सरकार–प्रायोजित संस्कृत कॉलेज के साथ सह–अस्तित्व में बनी हुईं थी जो एक समृद्ध और प्रगतिशील माहौल का वर्णन करना है, जहाँ विचारों और प्रयोगों तथा उत्साह का एक सच्चा परसंसेचन होता था। इस कॉलेज के उद्भव का काल अज्ञात था– एक मत है कि यह राममोहन के करीबी मित्र डेविड हेयर (1775–1842) की उपज था और सर्वप्रथम इस पर राय के मित्रों की बीच उनके घर पर हुई एक बैठक में चर्चा हुई थीं। इस विचार के कुछ ही समर्थक थे जबकि आलोचक ज्यादा थे लेकिन चाहे जहाँ से इसकी उत्पत्ति हुई हो, इसकी स्थापना से कलकत्ता में नए मध्यवर्ग के सामाजिक इतिहास में एक खास बदलाव आया। यह कॉलेज न सिर्फ छात्रों की संख्या के मामले में बड़ी तेजी से एक बेहद महत्त्वपूर्ण संस्थान बन गया बल्कि सामाजिक बदलाव के लिए भी यह मानव संसाधन विकसित और समर्थित करने में सक्षम हो गया। इस बदलाव का आधार यूरोपीय खुलेपन, प्रतिनिधित्व और स्वतंत्रता के विचारों के प्रति बढ़ता आकर्षण था। ये विचार हेनरी लुइस विवियन डेरोजियो जैसे विशिष्ट शिक्षकों के माध्यम से प्रसारित किए गए थे।

इससे हिन्दू कॉलेज के छात्रों में वैश्विक नजरिये के प्रति मूलभूत बदलाव आया और वे परंपरा, धर्म और सामाजिक कार्यों की पर्वूव्यापी मान्यता के आधार पर सभी प्रकार के व्यक्तिगत और सामूहिक पद्धतियों में शामिल होने लगे, कॉलेज के अनुभव ने उनमें मित्रता, कॉलेज–बंधुत्व और साझा प्रभावी अनुभवों की गहरी व्यक्तिगत संभावनाएं भर दीं जो लंबे समय तक मिलनसार भद्रलोक की शहरी संवेदनशीलता में बनी रही। इस प्रकार नए कॉलेज का परिणाम ऐसे सफल छात्रों के बैच के रूप सामने आया जो धर्म, हिन्दूवाद और इसके कार्यकलापों के बारे में अपने विचार व्यक्त करने से बिल्कुल नहीं घबराते थे और उदारवादी शिक्षा के समर्थन में अपनी राय देते थे। उग्र सुधारवादी विचारकों के तौर पर उन्होंने यंग बंगाल आंदोलन चलाया और अपनी विभिन्न गतिविधियों से हिन्दू समाज के रूढ़िवादी वर्गों की नाराजगी मोल ली। उनमें से कुछ ने तो पवित्र धागा (जनेऊ) पहनने से भी इनकार कर दिया जबकि कुछ लोगों ने उन कार्यों से परहेज कर लिया जो उन्हें बेतुके लगते थे। कुछ लोगों लगते थे। कुछ लोगों ने अपने घर का परित्याग कर दिया लेकिन वे सभी कलकत्ता के इतिहास में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो गए। हालाँकि यह आंदोलन असफल हो गया लेकिन इसकी अहमियत अनाकर्षक नहीं थी क्योंकि इससे सुब्रता दासगुप्ता को बोधात्मक रचनात्मकता और अंतर–सांस्कृतिक मानसिकता का चित्रण करने में मदद मिली।

सामाजिक बदलाव की एक और प्रतिक्रिया तब देखी गई जब कलकत्ता शहर की बुनियाद उन्नीसवीं शताब्दी की शुरूआत में विवेकपूर्ण और ज्ञानोदय मूल्यों की अनुकूल स्थिति से धार्मिक और सामाजिक कार्यों की बौद्धिक सोच पर आधारित परियोजना पर पड़ी। बंगाली बुद्धिजीवी वर्गों की इस संलग्नता को आमतौर पर नवजागरण काल या बुद्धिजीवियों का उदय माना जाता है जिसके केंद्र में राजा राममोहन राय जैसी हस्ती थीं।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

[1]. एंड्रयूज, सी.एफ. और मुखर्जी, गिरिजा, द राइज एण्ड ग्रोथ दि कांग्रेस इन इंडिया, लंदन, 1938.

[2]. वंधोपाध्याय, शेखर, पलासी से विभाजन तक, ओरियंट लौंगमैन, हैदराबाद, 2007.

[3]. बेकर, सी.जे., दि पॉलिटिक्स ऑफ साउथ इंडिया 1920–37, नई दिल्ली, 1976.

[4]. बेकर, सी.जे., और वाशब्रुक, डी.ए. साउथ इंडिया : पॉलिटिकल इंस्टीट्यूशंस एण्ड पॉलिटिकल चेंज 1880–1940, दिल्ली 1975.

[5]. बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ,ए नेशन इन मेकिंग, बंबई, 1925.

[6]. बैशम, ए.एम., ''ट्रेडिशनल इंप्लायंशेज ऑन द थॉट ऑफ महात्मा गाँधी'' इन रवीन्द्र कुमार (एडिटेड) एस्सेज इन गाँधीयन पॉलिटिक्स (1971).

[7]. बोस, सुभाषचंद्र, दि इंडियन स्ट्रगल, 1920–1934, कोलकाता, 1948.

[8] . ब्रूमफील्ड, जे.एच., इलीट कन्फ्लिक्ट इन ए प्लुरल सोसाइटी : ट्वेंटिन्थ सेंचुरी बंगाल, बंबई, 1968.

[9] . ब्राउन, जूडिथ, गाँधी राइज टू पावर, इंडियन पॉलिटिक्स 1915–1922, लंदन पेपरबैक एडिशन, 1947.

[10] .गाँधी एण्ड सिविल डिस्ओबिडियन्स : द महात्मा इन इंडियन पॉलिटिक्स 1928–1934, कैम्ब्रिज, 1977.

[11] .गाँधी : प्रीजर्नर ऑफ होप, लंदन, 1989.

[12] .बुच, एम.एम., राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इंडियन लिबरलिज्म, बड़ौदा, 1938.

[13] .भट्टाचार्य, सव्यसाची, ''नोट्स ऑन द रोल ऑफ द इंटेलीजेंशिया इन कॉलोनियल सोसाइटी : इंडिया फ्रॉम मिड–नाइनटीन्थ सेंचुरी', स्टडीज इन हिस्ट्री, नई दिल्ली, जिल्द 1, सं.1, जनवर–जून 1979.

[14] .चंद्र, तारा, हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, चार जिल्दें, दिल्ली, 1961–72.

[15] .चंद्र, बिपन द राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इकोनॉमिक नेशनलिज्म इन इंडिया, नई दिल्ली, 1966.